

संसाधनों का दोहन और विकासशील राष्ट्रों की जनसंख्या

डॉ. रामप्रताप गुप्ता

विकासशील राष्ट्रों में जब भी विकास सम्बंधी चर्चा होती है तो उनमें तेज़ी से बढ़ती जनसंख्या और विकास प्रक्रिया पर उसके प्रतिकूल प्रभावों का प्रश्न अवश्य उठता है। फिर इन राष्ट्रों में जनसंख्या का अर्थ अत्यधिक अनुपात में अशिक्षित, कुपोषित एवं अल्प-उत्पादकता वाली जनसंख्या और महिलाओं की ऊंची प्रजनन दर से जोड़ा जाता है। इसी संदर्भ में जनसंख्या के ऊंचे घनत्व (प्रति वर्ग किमी जनसंख्या) और उसमें तेज़ी से वृद्धि के फलस्वरूप देश के प्राकृतिक संसाधनों पर बढ़ते बोझ की बात भी उठाई जाती है।

प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से हर राष्ट्र की जनसंख्या का एक अनुकूलतम आकार होता है और कहा जाता है कि विकासशील राष्ट्रों, जैसे भारत, चीन, इंडोनेशिया आदि की जनसंख्या इस अनुकूलतम आकार से अधिक होती है और फिर उसमें तेज़ी से वृद्धि के कारण इनके प्राकृतिक संसाधनों का दोहन और अधिक तेज़ी से होने लगता है। यह उनकी जनसंख्या और प्राकृतिक संसाधनों के अनुकूलतम अनुपात को पार कर जाता है।

विकासशील राष्ट्रों की जनसंख्या की तेज़ी से वृद्धि के कारण उनके प्राकृतिक संसाधनों जैसे कोयला, तेल, प्राकृतिक गैस, वन आदि के तेज़ी से दोहन से पर्यावरण में कार्बन-डाईऑक्साइड, मोनोऑक्साइड आदि का तेज़ी से उत्सर्जन भी अधिक मात्रा में होता है जिसके फलस्वरूप वैश्विक तापक्रम में वृद्धि होने लगती है।

इन सब घटकों के फलस्वरूप निष्कर्ष निकाला जाता है कि इन राष्ट्रों में जनाधिक्य की समस्या होती है और इनमें और वृद्धि पर रोक लगाना आवश्यक माना जाता है। विकसित राष्ट्रों, जो विश्व के प्राकृतिक संसाधनों के बड़े भाग का दोहन करते हैं, को डर लगने लगता है कि कहीं विकासशील राष्ट्र प्राकृतिक संसाधनों के बराबर-बराबर वितरण की बात

उठाने लगे तो शायद आय के ऊंचे स्तर हेतु प्राकृतिक संसाधन उपलब्ध ही न हो सकें। इसलिए वे विकासशील राष्ट्रों पर यह मान्यता थोपते हैं कि उनकी बढ़ती जनसंख्या उनके विकास के मार्ग में बड़ी बाधा है और उन्हें उस पर रोक लगाने का हर संभाव प्रयास करना चाहिए।

इस हेतु वे विकासशील राष्ट्रों को हर तरह की सहायता भी देते हैं। रॉकफेलर, बारेन बर्क, जार्ज सारेस, टेड आदि पूंजीपतियों ने एक बैठक में यह निर्णय लिया कि विकासशील राष्ट्रों में तेज़ी से बढ़ती जनसंख्या को विश्व संसाधनों के तेज़ी से दोहन, पर्यावरण के लिए घातक और विकसित राष्ट्रों के सामाजिक संगठन और उद्योगों के लिए खतरे के रूप में देखना चाहिए, और उन्हें विकासशील राष्ट्रों के जनसंख्या नियंत्रण के प्रयासों में मदद करना चाहिए।

उनके मुताबिक विकासशील राष्ट्रों की बढ़ती जनसंख्या खुद उनके विकास प्रयासों की सफलता में बाधक तो है ही, साथ में वह विश्व में कार्बन डाईऑक्साइड आदि गैसों के बढ़ते उत्सर्जन और परिणामस्वरूप वैश्विक तापमान में वृद्धि आदि समस्याओं के लिए भी ज़िम्मेदार है। अतः जनसंख्या पर नियंत्रण उनके अपने हित में है तथा विश्व, विशेषकर विकसित राष्ट्रों, के हित में भी है।

इस निष्कर्ष को स्वीकार करने के पूर्व इस निष्कर्ष के पीछे की वास्तविकताओं पर नज़र डालना आवश्यक होगा। इस समय विश्व की संपन्न जनसंख्या विकसित राष्ट्रों में रहती है और गरीब आबादी विकासशील राष्ट्रों में केंद्रित है। ऐसे में अगर हम विश्व की संपन्न 20 प्रतिशत आबादी के उपभोग की तुलना सबसे गरीब 20 प्रतिशत आबादी के उपभोग से करें तो विकसित और विकासशील राष्ट्रों के उपभोग के बारे में अनुमान लगा पाएंगे। ऐसा करने पर हम पाते हैं कि विश्व के कुल निजी उपभोग में संपन्न 20

प्रतिशत जनसंख्या का हिस्सा 86 प्रतिशत है जबकि सबसे गरीब 20 प्रतिशत का हिस्सा मात्र 1.30 प्रतिशत ही है। ऊर्जा की खपत का इन दोनों में हिस्सा इस प्रकार है: संपन्न 20 प्रतिशत आबादी का हिस्सा 58 प्रतिशत और सबसे गरीब 20 प्रतिशत आबादी का मात्र 4 प्रतिशत है। विश्व के वाहनों का इन दोनों प्रकार की आबादी के मध्य वितरण क्रमशः 87 प्रतिशत और 1 प्रतिशत है। कुल मांस और मछलियों के उपभोग में गरीब 20 प्रतिशत आबादी का हिस्सा 5 प्रतिशत ही है।

कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि विश्व की संपन्न आबादी द्वारा सबसे गरीब 20 प्रतिशत आबादी की तुलना में 4 गुना अधिक संसाधनों का उपभोग किया जाता है। आय के वितरण को देखें तो विश्व की कुल आय में संपन्न 20 प्रतिशत आबादी का हिस्सा गरीब 20 प्रतिशत आबादी की आय के हिस्से की तुलना में 74 गुना अधिक है।

कुछ उदाहरणों से यह तथ्य और स्पष्ट हो जाएगा। चीन, बांग्लादेश और भारत द्वारा पर्यावरण में उत्सर्जित कार्बन डाईऑक्साइड आदि गैसों की कुल मात्रा की तुलना में अकेले अमेरिका द्वारा अधिक मात्रा उत्सर्जित की जाती है जबकि इन राष्ट्रों में विश्व की 40 प्रतिशत आबादी निवास करती है और अमेरिका में मात्र 4 प्रतिशत के लगभग ही निवास करती है। अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, रूस और इंग्लैण्ड में विश्व की 7.7 फीसदी आबादी रहती है, और उनके द्वारा उत्सर्जित कार्बन डाईऑक्साइड आदि गैसों के उत्सर्जन की मात्रा कुल का 40 प्रतिशत है। सन 2009 के एक अध्ययन के अनुसार जिन राष्ट्रों में आबादी तेज़ी से बढ़ रही है उनमें उत्सर्जित कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा सबसे धीमी दर से बढ़ रही है। सन 1980 और 2005 के मध्य सहारा के नीचे के अफ्रीका में निवास करने वाली आबादी द्वारा अतिरिक्त मात्रा में उत्सर्जित कार्बन डाईऑक्साइड का 18.4 प्रतिशत भाग उत्सर्जित किया था, जबकि कुल 4 प्रतिशत भाग वाले अमेरिका का हिस्सा 14 प्रतिशत था। विश्व के विकासशील राष्ट्रों में निवास करने वाली आबादी के 63 प्रतिशत भाग द्वारा उत्सर्जित कार्बन डाईऑक्साइड आदि की मात्रा में बहुत ही धीमी गति से वृद्धि हो रही थी।

प्रायः यह भी कहा जाता है कि विश्व में उसकी तेज़ी से बढ़ती जनसंख्या के लिए पर्याप्त खाद्य सामग्री का उत्पादन नहीं हो पाता है जिसके कारण विश्व की आबादी का बड़ा भाग कुपोषण और भुखमरी से ग्रसित होता है। लेकिन जब हम सन 2010 में उत्पादित अनाज की मात्रा पर दृष्टि डालते हैं, तो पाते हैं कि इससे प्रत्येक व्यक्ति प्रति दिन 5339 कैलोरी ऊर्जा मिल सकती है जबकि एक शारीरिक श्रम करने वाले व्यक्ति को भी अधिकतम 3000 कैलोरी ऊर्जा ही आवश्यक होती है और औसतन 2400 कैलोरी की आवश्यकता होती है। लेकिन विकसित राष्ट्र उत्पादित अनाज के बड़े भाग का उपयोग तो पशु खाद्य और जैविक पेट्रोल के उत्पादन में कर लेते हैं। फिर सन 2006-08 में प्रति व्यक्ति खाद्यान्न का वितरण भी बढ़ा असमान रहा, जहां कुछ व्यक्ति आवश्यकता से अधिक उपभोग के कारण मोटापे के शिकार हो जाते हैं वहीं अन्य कुपोषण के शिकार हो जाते हैं। दूसरी तरह से प्रस्तुत करें तो हम पाते हैं कि विश्व में सन 1950 के बाद आबादी बढ़कर दुगुनी हो गई है तो खाद्यान्न उत्पादन बढ़कर तिगुना हो गया है। यदि कृषि तकनीक में उसी दर से सुधार होता रहा जिस दर से अब तक होता रहा है तो खाद्यान्नों के अंतर्गत क्षेत्र से 10 अरब व्यक्तियों की आवश्यकता की पूर्ति हो सकती है।

कुल मिलाकर विकासशील राष्ट्रों की तेज़ी से बढ़ती जनसंख्या कोई समस्या नहीं है क्योंकि उसके उपभोग का स्तर विकसित राष्ट्रों की जनसंख्या के उपभोग की तुलना में काफी कम होता है, इसी वजह से उनके द्वारा कार्बन डाईऑक्साइड आदि ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन भी कम होता है। अतः तापमान परिवर्तन में उनका योगदान भी कम ही होता है। वास्तविकता तो यह है कि विकसित राष्ट्रों की जनसंख्या में निम्न स्तरीय वृद्धि के बावजूद उनके उपभोग का स्तर विकासशील राष्ट्रों के उपभोग से कई गुना होने के कारण विश्व संसाधनों का दोहन काफी अधिक होता है और इनके अनुकूलतम आकार से अधिक होने के लिए वे ही ज़िम्मेदार होते हैं। मौसमी परिवर्तनों में भी उनका योगदान विकासशील राष्ट्रों की तुलना में काफी अधिक ही होता है।

(स्रोत फीचर्स)